गया। इस पर अधिकार करने के बाद वह कन्दहार की ओर बढ़ा और ऐवज़ खाँ के वहाँ पहुँचने के चार दिन बाद वह भी वहाँ पहुँच गया। इधर कन्दहार के गढ़-रक्षकों में एक नई विपत्ति उठ खड़ी हुई। उनमें से जो गुप्त रूप से सियामूश से साँठ-गाँठ कर रहे थे उनको अली मरदान खाँ का कार्य बड़ा ही बुरा एवं घृणित लगा। इस विरोधी गुट का नेता था—कन्दहार का क़ाज़ी मुहम्मद अमीन। उसने अली मरदान के सामने यह सुझाव रखा कि वह धोखा देकर ऐवज़ खाँ का वध कर डाले और उसका सिर काट कर शाह के पास भेज दे। ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद अमीन की इन बातों से अली मरदान खाँ बहुत प्रभावित हो गया था, परन्तु कुछ देर बाद अली मरदान खाँ के पास एक अन्य कर्मचारी मशहद क़ुली खाँ आया। इससे उसने अपनी मानसिक व्यथा की बात कही। मशहद क़ुली खाँ ने अली मरदान खाँ से यह कहा कि अब जबकि मामला इतनी दूर तक पहुँच चुका है तो उसके लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करना अशोभनीय होगा। इसके पश्चात् अली मरदान खाँ रात भर शांतिपूर्वक सोया और प्रातःकाल उठकर उसने दुर्ग को शाही पदाधिकारियों को सौंप दिया।[२२] फिर भी सियामूश का भय तो उसको निरन्तर सताता ही रहा और वह व्यग्रता से काबुल और मुलतान से कुमुक की प्रतीक्षा करने लगा।

शाहजहाँ द्वारा धन-वितरण

क़ुलिज खाँ और सईद खाँ के प्रपत्रों और अली मरदान खाँ के पत्रों को पाकर शाहजहाँ हर्ष से गद्गद् हो उठा। दक्षिण में शानदार विजयों के बाद ही कन्दहार का समर्पण उसकी दृष्टि में एक अद्भुत और वैभवपूर्ण घटना थी। तुरन्त ही उसने सईद खाँ को यह आदेश भेजा कि काबुल के कोष से पाँच लाख रुपए लेकर अली मरदान खाँ की मदद को पहुँच जाए। इस राशि में से एक लाख तो अली मरदान खाँ को दे, दो लाख अपने पास रख ले और शेष दो लाख अन्य सेवकों में बाँट दे। उसे यह भी कहा गया कि वह मलिक मगदूद, उसके भाई और अली मरदान खाँ के अन्य समर्थकों को भी यथोचित पुरस्कारों से निहाल करदे।[२३] इस प्रकार धन लुटा कर सम्राट् ने विश्वासघाती अली मरदान खाँ और उसके साथियों को प्रसन्न कर दिया।

कन्दहार के संरक्षण की व्यवस्था

हर्ष से ओतप्रोत और गर्व से चूर होने के बावजूद शाहजहाँ ने बहुत ही विवेक और सतर्कता से काम लिया। कन्दहार के अधीनीकरण की ईरान के शाह पर क्या प्रतिक्रिया होगी इसका उसको यथेष्ट ज्ञान था। अतः उसने दुर्ग-सुरक्षा की यथासाधन पूरी व्यवस्था की। उसने क़ुलिज खाँ का मनसब बढ़ा कर ५००० ज़ात और ५००० सवार कर दिया और उसको गढ़ का अध्यक्ष नियुक्त किया। ईरानी सेना द्वारा आक्रमण की संभावना का विचार कर उसने भक्कर के प्रांतपति यूसुफ़ मुहम्मद खाँ ताशकन्दी तथा सीस्तान के प्रांतपति जां निसार खाँ को यह आदेश दिया कि वह कन्दहार के गढ़-रक्षकों की कुमुक को तुरन्त ही रवाना हो जाए। और अधिक पूर्वविधान की दृष्टि से सम्राट् ने राजकुमार

Scanned with CamScanner

शुजा का मनसब बढ़ाकर १२,००० जात और ८००० सवार कर दिया और उसको काबुल भेज दिया। उसको यह आदेश मिला कि यदि ईरानी सेना कन्दहार पर शाह सफ़ी की कमान में चढ़ाई करे तो वह स्वयं वहाँ जाए अन्यथा उसको चाहिए कि वह खानेदौराँ, जयसिंह, अमरसिंह, गजसिंह, लहरास्प इत्यादि को ही वहाँ भेजे। पंजाब के प्रांतपति वज़ीर खाँ को यह निर्देश दिया गया कि वह शाही सेना को रसद की पूर्ति करता रहे।

ईरानियों का खदेड़ा जाना

इस बीच कन्दहार में क्या हुआ, यदि हम इस ओर अपना ध्यान आकृष्ट करें तो हमको यह पता चलेगा कि सईद खाँ ने वहाँ पहुँचने के उपरांत वहाँ की तत्कालीन परिस्थिति का निरीक्षण किया। सर्वप्रथम उसकी दृष्टि गढ़-रक्षकों में विद्यमान संदेह एवं विरोध की भावना की ओर गई और वह समझ गया कि इसका एकमात्र कारण है सियामूश और उसकी सेना की उपस्थिति। अतः उसने बाहर वाले शत्रु को भगाने और आन्तरिक शांति स्थापन करने की योजना बनाई। अपने पुत्र और अली मरदान खाँ को तो उसने दुर्ग में छोड़ा और स्वयं १ अप्रैल को बाहर निकल पड़ा और अपनी सेना को पंक्तिबद्ध तथा अस्त्रशस्त्र से लैस कर शत्रु से टक्कर लेने को आगे बढ़ा। सर्वप्रथम दोनों पक्षों के हरावलों में मुठभेड़ हुई। शाही हरावल राजा जगतसिंह की कमान में था। उसने शत्रु की चोटों का न केवल डट कर मुक़ाबिला ही किया बल्कि उसे पीछे हटने को विवश भी कर दिया। तत्पश्चात् समस्त सेना युद्धरत हो गई। अब अली मरनान खाँ के सैनिक भी दुर्ग के बाहर निकल आए और शाही दक्षिण पार्श्व का नेतृत्व करने लगे परन्तु शीघ्र ही परास्त हो गए। संयोगवश सईद खाँ ठीक समय पर आ गया, उसने परिस्थिति को संभाल लिया। सैनिक पुनः एकत्र हो गए और उन्होंने आक्रमणकारियों को पीछे ढकेल दिया। इसके बाद संघर्ष समाप्त हो गया और सियामूश हेलमन्द नदी के पार भाग गया। शाही सेना ने उसका पीछा किया और उसके सारे शिविर को हस्तगत कर लिया। इसके बाद सईद खाँ कन्दहार लौट आया और वहाँ से उसने सारा विवरण सम्राट् को लिख भेजा। अब उसको यह आदेश मिला कि बिस्त और ज़मींदावर को भी अधिकृत कर ले।[२४]

यादगार बेग का ईरान से आना

कन्दहार पर अधिकार करने के उपरान्त गरमागरम कार्यक्रम चल ही रहा था कि शाह सफ़ी का दूत यादगार बेग जिसको कि उसने सफ़दर खाँ के साथ भेजा था मुग़ल दरबार में आ पहुँचा। शाह ने पत्र में तुर्की के सुलतान के खिलाफ़ अपनी शानदार विजय का विवरण अधिक दर्पपूर्ण शब्दों में लिखा और यह भी कहा कि उसने किस प्रकार ईरवान पर पुनः अधिकार कर लिया है।[२५] यथापद्धति दूत का आगरा में बड़े सम्मान से स्वागत हुआ। किन्तु दरबारी इतिहासकार ने यह नहीं स्पष्ट किया है कि सफ़दर खाँ भी उसके साथ आया था या नहीं।

सफ़दर खाँ के कारनामे

ऐसा प्रतीत होता है कि शाह सफ़ी के रुख और उसकी तैयारियों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से सफ़दर खाँ ईरान में ही विचरता रहा। फिर कन्दहार पहुँचकर उसने सईद खाँ को यह बताया कि शाह सफ़ी को इस अपमानजनक घाटे का इतना तीखा दुःख है कि वह अक्सर यह कहा करता है कि "मुझे ईरवान या बग़दाद खो देना तो सह्य है परन्तु कन्दहार का हाथ से निकल जाना बिल्कुल ही असह्य है तथा उसकी पुनः प्राप्ति के लिए मैं भरसक कोई भी उपाय उठा न रखूँगा।" सफ़दर खाँ ने सईद खाँ को यह भी बताया कि शाह एक विशाल सेना भेजने का भी विचार कर रहा है।[२६] परन्तु मुग़लों का सौभाग्य था कि मुराद चतुर्थ द्वारा बग़दाद-विजय के फलस्वरूप शाह सफ़ी पश्चिमी सीमा पर इतना व्यस्त हो गया कि उसका किसी अन्य विषय की ओर ध्यान देना असम्भव हो गया और जब तुर्की से सुलह करने के बाद वह कन्दहार की ओर मुड़ा भी तो इतना विलम्ब हो चुका था कि किसी प्रकार का भी प्रयास व्यर्थ सिद्ध होता क्योंकि मुग़लों की स्थिति वहाँ बहुत ही सुदृढ़ हो चुकी थी। तिस पर भी शाह ने रुस्तम खाँ को यह आदेश दिया कि खुरासान जाकर वह भावी अभियान के लिए सेना की व्यवस्था करे। परन्तु योजना-पूर्ति के पूर्व ही २ मई सन् १६४२ ई० को शाह सफ़ी परलोक सिधार गया।

मिर्ज़ा हुसैन का कार्य

यहाँ कुछ शब्द मिर्ज़ा हुसैन के दूतकार्य के सम्बन्ध में प्रासंगिक होंगे। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, उसको सफ़दर खाँ के बाद ही इस गोपनीय लक्ष्य से ईरान भेजा गया था कि वहाँ की दशा की ठीक-ठीक सूचना दे। मिर्ज़ा हुसैन का ईरानी दरबार में हार्दिक स्वागत हुआ और शाह सफ़ी ने शीघ्र ही मुगल सम्राट् को पत्र का उत्तर भी दे दिया। उसने शाहजहाँ को 'चाचा' कहकर सम्बोधित किया और उसकी सफलताओं पर हर्ष भी प्रकट किया परन्तु दक्षिण के शासकों के सम्बन्ध में वह बिल्कुल मौन ही रहा।[२७] इस तरह का उसका रुख बहुत ही अर्थान्वित था। बीजापुर और गोलकुण्डा से उसके सम्बन्ध अत्यन्त सौहार्दपूर्ण थे, इस कारण मुग़ल सम्राट् द्वारा उन्हें आतंकित किया जाना उसे कैसे भाता? अपने अनुमोदन को अभिव्यक्त करने का उसके पास केवल एक ही शिष्ट उपाय था और वह था इस विषय के सम्बन्ध में मौन धारण कर लेना। जहाँ तक भारत में आए हुए ईरानी दूत यादगार बेग की बात है, वह सन् १६३९ ई० में अपने देश वापस चला गया। जो पत्र वह अपने स्वामी के नाम ले गया उसमें शाहजहाँ ने कन्दहार घटना की सफ़ाई दी, उसके लिए क्षमा माँगी और शाह से यह अनुरोध किया कि उसे भूल जाए।[२८] इसके बाद मुग़ल और सफ़वी दरबारों के पारस्परिक सम्बन्ध तनावपूर्ण ही रहे। मित्रता का लेशमात्र चिह्न न रह गया।

शाह अब्बास द्वितीय

शाह सफ़ी के स्थान पर शाह अब्बास द्वितीय सिंहासन पर बैठा। इस समय वह केवल ११ वर्षीय बालक था। अवयस्कता के दौरान शासन-संचालन का भार उसके वजीर

Scanned with CamScanner

सारू तक़ी के कन्धों पर ही रहा। यह ईरान का सौभाग्य था कि इस समय उसके शत्रु क्रियाशील न थे। सुलतान मुराद चतुर्थ मर चुका था और उसके स्थान पर सुलतान इब्राहीम गद्दी पर बैठ गया था। परन्तु न तो अपने पूर्वज के समान वह महत्त्वाकांक्षी ही था और न ही उतना परिश्रमी। अतः पश्चिमी सीमा पर तत्काल कोई ख़तरा न था। उधर उज़बेग और हश्तरखानी अपने घरेलू झगड़ों में ही उलझे हुए थे फिर ईरान से कैसे झगड़ा मोल ले सकते थे ? ऐसी दशा में सारू तक़ी को कन्दहार-अभियान के लिए यह अवसर उचित ही जान पड़ा। अतः उसने रुस्तम खाँ को आदेश दिया कि उन सेनाओं को पुनः इकट्ठा कर ले जो कि शाह सफ़ी की मृत्यु के बाद विसर्जित हो गई थीं। जब शाहजहाँ को इन तैयारियों का समाचार प्राप्त हुआ तब उसने राजकुमार दारा शिकोह को इस सैन्य-संघटना का मुक़ाबिला करने का आदेश दिया। यह सुनकर सारू तक़ी ने अभियान का विचार ही त्याग दिया।[२९]

जां निसार खाँ का ईरान जाना

काश्मीर से वापस आते समय जब सम्राट् शाहजहाँ बलख़-अभियान के प्रबन्ध का पर्यवेक्षण करने के अभिप्राय से काबुल जाने के विचार से लाहौर में ठहरा हुआ था, १६ मार्च सन् १६४६ ई० को उसने जां निसार खाँ को अपना राजदूत बनाकर ईरान भेजा।[30] शाह सफ़ी की मृत्यु के बाद ईरान से सम्पर्क स्थापित करने का मुग़ल सम्राट् का यह प्रथम प्रयास था। उसका प्रमुख लक्ष्य था—कन्दहार के अधीनीकरण के कारण बिगड़े हुए सम्बन्धों को पुनः सँभाल लेना। शाहजहाँ की यह हार्दिक इच्छा थी कि दोनों राज्यों में फिर से मैत्री स्थापित हो जाए। परन्तु इसमें एक स्वार्थ भी निहित था। मुग़ल सम्राट् तूरान में अपनी योजना कार्यान्वित करने के फेर में था। इसके लिए ईरान के सम्राट् की निरपेक्षता परम आवश्यक थी। अब्बास द्वितीय से बिना मेल किए यह असम्भव था कि उसको हश्तरखानियों के विषय के प्रति उदासीन किया जा सके। परन्तु यह उद्देश्य तो प्रच्छन्न था, प्रत्यक्षतः तो दूत को शाह अब्बास को बधाई देने के बहाने ही भेजा गया। इतने विलम्ब के बाद यह कार्य असंगत ही प्रतीत होता है।

पत्र का विवरण

जो पत्र जां निसार खाँ शाह के नाम ले गया, वह बहुत ही लम्बा था। समकालीन कूटनीति के दृष्टिकोण से तो वह बहुत ही दिलचस्प है। उसमें बधाई और संवेदन, परामर्श और खेद का एक विचित्र सम्मिश्रण है। उसकी अलंकृत भाषा में स्वार्थ की एक प्रबल धारा सुस्पष्ट प्रवाहित है। युगीन-प्रथा के अनुरूप पत्र के प्रारम्भ में ईश्वर-वन्दना तथा हज़रत मुहम्मद की प्रशस्ति है, फिर कुछ शब्दों द्वारा शाह सफ़ी की मृत्यु पर संवेदन अभिव्यक्त किया गया है। मुग़ल सम्राट् ने इस दुर्घटना का मुख्य कारण यह बताया कि उसने उस परामर्श का तिरस्कार किया जो सफ़दर खाँ ने उसे दिया था। इसके बाद शाह के सिंहासनासीन होने पर बधाई के शब्द हैं। तत्पश्चात् पत्र का वास्तविक विषय आता है जिसमें कन्दहार घटना का उल्लेख है : "यह तो सर्वज्ञात है कि अली मरदान खाँ

ने आवश्यकता से ही विवश होकर आत्मसमर्पण किया है, न कि स्वेच्छा से। दिवंगत शाह का आतंकपूर्ण व्यवहार ही इसका प्रमुख कारण था। अतः अली मरदान खाँ ने जो क़दम उठाया उसके औचित्य में कोई भी संदेह नहीं रह जाता है।" फिर शाहजहाँ शाह से यह अनुरोध करता है कि वह अली मरदान खाँ के पुत्र को, जो कि अभी ईरान में था, भारत भेजने की कृपा करे। अन्त में सम्राट् ने मैत्रीपूर्ण सहयोग और सहायता की भावना प्रकट की है। जां निसार खाँ का काम बहुत ही सफल रहा।[३१]

शाह अब्बास की निष्क्रियता के कारण

परन्तु यह धारणा कि शाह अब्बास द्वितीय शाहजहाँ के मैत्रीपूर्ण इशारे के कारण ही चुप बैठा रहा तर्कसंगत नहीं है। उसकी निष्क्रियता का मौलिक कारण थी—उसके देश की राजनीतिक दशा। शाह अभी अवयस्क ही था तथा अवयस्कीय शासन के दोषों के फलस्वरूप सबल वैदेशिक-नीति का पालन असम्भव था। इसके अलावा वज़ीर सारू तक़ी सारी प्रभुसत्ता अपने ही हाथों में बटोरने लगा था और प्रतिद्वन्द्वियों को एक-एक करके हटा रहा था। उसने रुस्तम खाँ और उसके भाईयों को मरवा डाला और इसी प्रकार तोपखाने के अध्यक्ष मीर फ़तेहउल्ला का भी वध कर डाला। उसने अनेक कर्मचारियों को इस कारण पदच्युत कर दिया कि वे उसकी हाँ-में-हाँ मिलाने में असमर्थ थे। अन्ततोगत्वा उसके खिलाफ़ तीव्रता से असन्तोष बढ़ा, यहाँ तक कि १ अक्तूबर सन् १६४५ ई० को उसका वध हो गया।[३२]

बलख-अभियान के बाद शाहजहाँ का शाह के नाम पत्र

इन स्थितियों में तूरान में शाहजहाँ का कार्यकलाप निर्विघ्न रूप से चलता रहा यहाँ तक कि उसने बलख़ पर भी धावा बोल दिया। वहाँ का शासक नज्र मुहम्मद ईरान भाग गया और वहाँ पहुँचकर शाह से आश्रय की याचना की। अपनी विजयों के उपरान्त शाहजहाँ ने अहसला बेग[३३] द्वारा शाह अब्बास द्वितीय के नाम एक पत्र भेजा जिसमें उसने तूरान-अभियान का विवरण दिया और उसका औचित्य भी प्रस्तुत किया। उसने लिखा कि उस देश की समस्त मुस्लिम जनता अत्याचार से उत्पीड़ित हो रही थी तथा उसके जीवन एवं मर्यादा की सुरक्षा हेतु वह लाहौर से प्रस्थान कर काबुल आया और वहाँ से उसने राजकुमार मुराद को बलख़ को अधिकृत करने भेजा। इस पत्र के अन्तिम वाक्य अवधेय हैं : "धन्य है परमात्मा ! कि बलख और बदख़शाँ विजित हो गए। हम उसके द्वार के याचक हैं। अतः हमारी यह प्रार्थना है कि यह विजय मंगलमय हो तथा समरकन्द और बुख़ारा पर भी हमारा अधिकार हो जाए।" परन्तु तूरान में जो सफलता प्राप्त हुई वह उतनी ही क्षणभंगुर सिद्ध हुई जितनी कि उसकी गति तीव्र थी। १ अक्तूबर सन् १६४७ ई० तक मुग़लों को उस आतिथ्य विमुख प्रदेश से विवश होकर हटना ही पड़ा।

मुग़लों की प्रतिष्ठा में हानि

बलख में मुग़लों की पराजय के कारण तूरान में उनकी सामरिक प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। दो अभियानों के फलस्वरूप, जिनका कि अनुक्रमिक संचालन बेगवत् हुआ

Scanned with CamScanner